सम्पादक परिचय -

नाम- श्री मती कमलेश

पिता- स्वः श्री सुभाष चंद्र

माता-श्री मती कलावती

स्नातक- फतेह चंद महिला महाविद्यालय हिसार (हरियाणा)

स्नातकोत्तर - फिरोज गाँधी मेमोरियल राजकीय महाविद्यालय, मण्डी आदमपुर (हिसार) हरियाणा

पीएचडी - गुरू जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

लेखन - विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों में शोध पत्र वाचन तथा अनेक पत्रिकाओं में आलेख/ शोध पत्र प्रकाशित

रुचि- अध्ययन, अध्यापन तथा लेखन

शैक्षणिक उपलब्धियां - नेट (हिन्दी)

स्नातकोत्तर (हिंदी) में विश्व विद्यालय में प्रथम स्थान।

विकास बुक कम्पनी

4378/4-बी, जेएमडी हाउस,
मुरारिलाल गली, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मोबाइल : 8860445926

Email : vbcompany22@gmail.com

ISBN : 978-93-94628-46-5

संत साहित्य तथा संत वाणी

संत साहित्य तथा संत वाणी

कमलेश

कमलेश

संत साहित्य तथा संत वाणी

संपादक
कमलेश

विकास बुक कम्पनी
नई दिल्ली-110002

16. संत साहित्य और लोक मंगल भावना 97
साईमीरा जोशी
17. संत साहित्य तथा सामाजिक परिवेश 102
डॉ. आर. कविता
18. संत साहित्य में कबीरदास की भूमिका 108
डॉ. जिनु जॉन
19. संत साहित्य में नारी विमर्श 113
डॉ. सीताराम आठिया
20. संत साहित्य में नारी विमर्श 120
मधुमती एस. पचांगी 'जोशी'
21. संत साहित्य में लोकमंगल की भावना 123
डॉ. अमनदीप कौर
22. सन्त काव्य में लोक मंगल भावना का निरूपण 129
डॉ. गोपीराम शर्मा
23. संत साहित्य में नैतिक मूल्यों की अवधारणा 139
राज श्री भारद्वाज
24. संत तिरूवल्लुवर से रचित तिरूक्कुरल के धर्मकाण्ड में नैतिक और जीवन मूल्य 145
डॉ. के. अनंधी
25. Meerabai and Her Divine Engagement with Lotus Eyed Lord 151
Dr. Subhash
26. संतवाणी तथा जीवन दर्शन का स्वरूप 158
डॉ. मीनू शर्मा
27. गुरु जम्भेश्वर महाराज का कर्म योग सिद्धांत 165
डॉ. नरेश कुमार सिहाग
28. राजस्थान की महिला सन्त 172
प्रो. डॉ. रेखा सोनी
29. संत जाम्भोजी 176
डॉ. सुमन रानी
30. संत साहित्य के सन्दर्भ में संत कबीर दास 180
डॉ. प्रीति ग्रोवर
31. संत दादू दयाल 188
डॉ. संगीता अग्रवाल

संत साहित्य में लोकमंगल की भावना

डॉ. अमनदीप कौर
सहायक प्रवक्ता, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज
सन्तपुरा, यमुनानगर
Phone no- & 9354855646, 7015093138
Email id: amanmaan956.am@gmail.com

'लोक' शब्द को प्रायः दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। पहला शास्त्रीय अर्थ में इहलोक, परलोक एवं त्रिलोक तथा दूसरा प्रचलित अर्थ में 'जनसमुदाय' के रुप में। लोकमंगल की भावना के अन्तर्गत सभी जीवों पर दया-दृष्टि रखना, सभी के दुःख-दर्द में सहायक होना आदि बातें आती हैं। लोक का अर्थ है– जनसमुदाय और उसका परिवेश। संत कबीर, नामदेव, रामानंद, रैदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास, चरणदास, पलटू साहब, सहजोबाई, गरीबदास इत्यादि संतों ने अपनी वाणियों द्वारा लोकमंगल की भावना का प्रचार प्रसार किया।

लोकमंगल की भावना में मनुष्य अपने सम्पूर्ण स्वार्थों का विसर्जन कर व्यष्टि से समष्टि में समाहित हो जाता है। संत कवि समाज के ऐसे द्रष्टा थे जो सभी प्राणियों को सुखी देखना चाहते थे। वे समाज के सभी दुःख-दारिद्रय को अपने सिर पर लादकर लोगों के बोझ को हल्का करने में विश्वास रखते थे। संतों की यह परोपकार भावना उनके लोकमंगल का विशिष्ट स्वरूप है। संत साहित्य मानवीय सहानुभूति और सहृदयता का साहित्य है। इसमें मानव मात्र की समानता की भावना विद्यमान है। संत साहित्य समस्त नर-नारी को समभाव से एक सूत्र में बांध सकता है और हिंसा, टकराव, ईर्ष्या, वैमनस्य, युद्ध आदि को रोककर जन-जन को प्रेम की धार में चलकर स्वस्थ मानव की जीवन शैली संसार में उत्पन्न कर सकता है।

संत साहित्य जनता के सुख-दुःख और भावनाओं का साहित्य है, क्योंकि प्रभु की भक्ति में डूबने वाले अधिकांश संत समाज के निम्न वर्ग से आये थे। आध्यात्मिकता के उच्च सोपानों का स्पर्श करते हुए भी इन संतों ने दलित उत्थान, सामाजिक एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान

दिया। लोक क्रांति की ओर समाज को अग्रसर करने में इनकी वाणियां बहुत उपयोगी रही। इन्होंने सम्पूर्ण समाज को सदाचरण और लोकहित का पाठ बड़े सहज और सादगीपूर्ण तरीके से पढ़ाया और समाज को एकता के सूत्र में बांधने का मानवतावादी संदेश देकर समाज को नई दिशा दी।

लोकमंगल के तत्त्व वे तत्त्व हैं जो लोक में व्याप्त दुःख को मिटाने में सहायक हो, जैसे - अहिंसा, समता, परोपकार, सहयोग, प्रेम, करुणा, दया, क्षमा। वही काव्य लोकमंगल की कसौटी पर खरा उतर सकता है जिसमें व्यक्ति मात्र के लिए मंगल की भावना निहित हो।

संत कवियों ने मुक्त हृदय से समता का समर्थन व भेदभाव का विरोध किया है। उनका विश्वास है कि जब समस्त प्राणीमात्र का सृजनकर्ता एकमात्र ईश्वर है तब आपसी भेदभाव कैसा? यहां कौन ऊंचा है और कौन नीच? कौन ब्राह्मण है और कौन शुद्र? सभी में एक ही तत्त्व का समावेश है और वह परमतत्त्व है– परमात्मा। संतों ने समाज में व्याप्त जातिगत ऊंच-नीच के भेदभाव को न केवल देखा था अपितु स्वयं उन्हें इसे भुगतना भी पड़ा था, क्योंकि अधिकांश संत निम्न वर्ग से थे। पुरोहितों और काजियों द्वारा निजी स्वार्थ के लिए बनाए गए विधि और नियमों से संतों को चिड़ थी। संत नामदेव को पुरोहितों ने मन्दिर से केवल इसलिए निकाल दिया था क्योंकि वे निम्न जाति के थे–

हंसत खेलत तेरे देहुरे आया,
भगति करत नामा पकरि उठाया।
हीनड़ी जाति मेरी जाद भराया,
छीपे के जनमि काहे को आया।। [1]

कबीरदास जी ने भेदभाव और ऊंच-नीच की भावना को सामाजिक समरसता और एकता के लिए बाधक माना है और समाज को बहुत ही साफ संदेश दिया है–

ऊंचे कुल कह जनमिया, करनी ऊच न होय,
कनक कलश मद सो भरा, साधुन निंदा होय।। [2]

संत साहित्य भारतीय जनता की प्रेम, आशाओं और वेदना का दर्पण है। वह हृदय की सबसे कोमल एवं सबसे सबल भावनाओं का प्रतिबिम्ब है। संतों के प्राकट्य से समस्त जनता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो गया। कबीर साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश वही है जिसमें उन्होंने छुआछूत और सामाजिक अन्याय के विरोध में अपनी आवाज उठाई है। सामाजिक दृष्टि से कबीर का यह विद्रोह सर्वथा उचित ही था। सिक्ख मत के प्रवर्तक गुरु नानक देव जी साधु स्वभाव के थे, अपने स्वभाव के कारण अनेक साधुओं, फकीरों, सभी योगियों से मिले हुए थे। इन्होंने भी

अपनी वाणी में सामाजिक अन्याय और ऊंच-नीच का विरोध किया। हिन्दू-मुस्लमानों के बीच एकता स्थापित करने के लिए इन्होंने उपदेश दिए। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में गुरु नानक जी ने जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर प्राणीमात्र की समानता और भक्ति पर बल दिया–

आगे जाति ने जोरु है आगे जीउ नये।
जिनकी लेखे पति पवै चंगे सेई की।। [3]

अर्थात प्रभु के द्वार पर न कोई जात है न ही कोई ऊंच-नीच और छुआछूत का कोई प्रश्न। संत रैदास स्वयं भी चर्मकार जाति के थे परन्तु उन्होंने सद्कर्म पर बल दिया और समाज में व्याप्त रूढ़ियों, पाखण्ड और आडम्बरों का खण्डन करते हुए मानवतावाद और समतामूलक कर्म व श्रम संस्कृति का समर्थन किया। रैदास जी बाह्य आडम्बरों का खण्डन करते हुए कहते हैं–

कहा भयो जै मूंड मुडायौ,
बहु तीरथ वृत कीन्हें।
स्वामी दास भगत अरु सेवग,
जो परम तत न चीने हैं।। [4]

तत्कालीन समाज में वर्ण भेद, जाति भेद अपने विकराल रुप में व्याप्त थे। तत्कालीन समाज वर्ण व्यवस्था की विषमता के साथ-साथ आर्थिक असमानता से भी बुरी तरह ग्रस्त एवं जर्जर था।

संत कवि प्रेम और करुणा को जीवन की उच्चतम और उदात्त अनुभूति मानते हैं, क्योंकि करुणा और दया ही सभी धर्मों का आधार है। प्रेम की प्राप्ति होने पर साधक का अंहभाव तिरोहित हो जाता है, वह स्वयं को भूल जाता है। इस स्थिति में उसके मन में किसी के प्रति वैर-राग-द्वेष की भावना नहीं रहती है। जिसके हृदय में करुणा का भाव जागृत हो जाता है, वही महानतम व्यक्ति है। कबीर जी की लोक कल्याण एवं समस्त कल्याण की भावना राग-द्वेष से नितान्त मुक्त निरपेक्ष मंगल भावना थी–

कबिरा खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर।
ना काहू से दोसती, न काहू से वैर।। [5]

गुरु नानक जी और संत रैदास ने नारी को नरक का द्वार और माया स्वरूप न मानकर स्त्री को सम्मान दिया। रैदास जी ने नारी के भक्ति व ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ही मीराबाई को दीक्षा देकर एक नयी दिशा प्रदान की।

इसी प्रकार संतों ने अपनी वाणी के माध्यम से लोक कल्याण की कामना करते हुए प्रेम, भक्ति और ज्ञान की धारा प्रवाहित की। संतों ने उस परमात्मा की प्राप्ति

का माध्यम सद्गुरु को बताया और प्रेम की महत्ता को स्थापित किया। क्योंकि उनका मानना था कि अंहकार के त्याग, सदाचरण और सच्चे प्रेम के द्वारा ही परमात्मा को पाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में गुरु नानक जी ने कहा–

सा सनिआसी सो सतगुरु सेवे विचहु आपु गवाए।। [6]

अर्थात जो व्यक्ति अंहकार को त्याग सतगुरु की सेवा करता है वही सच्चा संन्यासी है।

संत सहजोबाई गुरु के बिना ज्ञान और पाण्डित्य का कोई मूल्य नहीं मानती–

अष्टादश और चार षट, पढ़ि-पढ़ि अर्थ कराहिं।
भेद न पावै गुरु बिना, सहजो सब भर माहिं।। [7]

संत गुरु की प्राप्ति भी सहज नहीं मानते, उनके अनुसार जब प्रभु की कृपा होती है तभी सतगुरु की प्राप्ति होती है। संत सुन्दरदास कहते हैं कि सतगुरु का मिलना जग में दुर्लभ है, प्रभु कृपा न हो तो सतगुरु की प्राप्ति नहीं हो सकती–

सुन्दर सतगुरु से मिल्या जो दुल्लभ जग मांहि।
प्रभु कृपा ते पाइये, नहिंतर पाइये नांहि।। [8]

एक महत्त्वपूर्ण बिंदु जो संत साहित्य की लोकमंगल की भावना को प्रमाणित करता है, वह है मन, वचन, कर्म से किसी भी प्राणी मात्र का अहित न करने का भाव और सेवा का भाव। सत्य के बाद अहिंसा ही संसार में सबसे बड़ी शक्ति है। सभी संत सदाचरण करने वाले वैष्णव भक्त थे। दुराचारी तांत्रिक तथा अपने स्वाद की तृप्ति के लिए कुछ लोग धर्म के नाम पर हिंसा को बढ़ावा दे रहे थे। अहिंसावादी संतों ने इनका विरोध करते हुए अहिंसा धर्म का प्रसार किया। संत सुन्दरदास ने मन, वचन और कर्म से किसी को हानि न पहुंचाना ही हिंसा है, यह स्पष्ट किया–

मन धरि दोष न कीजिए, वचन न लावै कर्म।
पात न करिये देह सौं, इहै अहिंसा धर्म।। [9]

अहिंसा लोकमंगल का प्रमुख तत्त्व है क्योंकि इस संसार में सभी प्राणियों को समान रूप से जीने का अधिकार है। अहिंसा ही परम धर्म है, संत मलूकदास का विश्वास है कि हाथी से लेकर चींटी तक सभी प्राणियों में ईश्वर का वास है। इसके साथ ही वे समस्त वनस्पति जगत में भी ईश्वर का वास मानते हैं। इसलिए वनस्पतियों को नुक्सान पहुंचाना परोक्ष रुप से हिंसा ही है–

कुंजर चींटी पशू नर सब में साहेब एक,
काटे गला खोदाय का करै सूरमा लेख।। [10]

सभी संत जीवों में अभिन्नता के दर्शन करते हैं और सभी को अपने जैसा ही मानते हैं। गुरु नानक जी कहते हैं कि हमें देह पोषण के लिए किसी जीव की हत्या

नहीं करनी चाहिए, सभी को अपने जैसा ही समझना चाहिए–

क्या बकरी क्या गाय है, क्या अपना जाया।
सबका लोहु एक है, साहब ने फरमाया।। [11]

सूफी संतों ने भी उदार और समन्वयवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए 'खालिक खलक - खलक में खालिक' कहकर उस परमात्मा की व्यापकता का समर्थन किया तथा मानव-मानव की एकता व प्रेम का संदेश अपने काव्य के माध्यम से दिया। कवि जायसी, कुतुबन, मंझन, नूर मोहम्मद का प्रेमाख्यानक काव्य इसका प्रमाण है।

संत साहित्य का प्रमुख प्रयोजन मानवतावाद की प्रतिष्ठा है। इस साहित्य में समन्वयवादिता, भावात्मक एकता और सांस्कृतिक अभिन्नता अभिवन्दनीय है। संत कवियों का उद्देश्य अपने समय के धर्म और समाज को सुधारना था। उनका उद्देश्य किसी धर्म या साधना की शास्त्रीय व्याख्या करना नहीं बल्कि उसके मर्म को खोजना तथा सहज एवं सरल भाषा में उसे जन-जन तक पहुंचाना था। अधिकांश संत पढ़ें-लिखे नहीं थे, लेकिन जीवन व्यवस्था के चिन्तक अवश्य थे। उन्हें स्वानुभूति के आधार पर जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ उसी को विश्वसनीय मानकर उन्होंने अपनी बात को प्रस्तुत किया। यही कारण है कि संत साहित्य में दार्शनिक उलझनों के बजाए समकालीन सामाजिक समस्याओं का पर्याप्त मात्रा में समाधान मिलता है।

उपरोक्त विवेचनोपरांत यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्णयुग की संज्ञा से अभिहित भक्तिकाल की संत काव्य परंपरा में लोकमंगल की भावना स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है। सभी संतों ने अपने उद्देश्यों के माध्यम से परमात्मा के अंश के रुप में सभी जीवों के हित की बात कहकर लोकमंगल की उदात्त समन्वयवादी विचारधारा को पल्लवित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनका उद्देश्य अपने समाज में फैली विकृतियों को दूर करके एक स्वस्थ समाज की सुव्यवस्थापूर्ण पुनः स्थापना करना था। 'उन्होंने धर्म की रुढ़ियों का उल्लंघन किया था। उन्होंने अपने प्रेम के अश्रुजल से देवता के आंगन से रक्तपात की कलंक रेखा धो डाली थी। इनके गीत दूर-दूर के गांवों में एकतारे पर सुनाई देते हैं। वह गीत भारतवर्ष की एकता के ही हैं। समाज के कर्णधारों की अवज्ञा के बावजूद उनकी अमर वाणी आज भी सर्वत्र गूंज रही है।'[12]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, संत काव्य, किताब महल, इलाहाबाद, प्रस्तुत संस्करण, 2001, पृ. सं. 84

2. कबीर अमृतवाणी, कबीर पारख संस्थान इलाहाबाद, पृ. सं. 55
3. गुरु नानक वाणी - आसा पद - 22, पृ. सं. 340
4. गुरु रविदास वाणी - पद संख्या 65, पृ. सं. 96
5. कबीर ग्रन्थावली, साखी 2, पृ. सं. 86
6. गुरु नानक वाणी - पृ. सं. 597
7. सहजोबाई, सहज प्रकाश, वेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद 2019, पृ. सं. 20
8. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र (संत) सुन्दर ग्रन्थावली, भाग - 1, पृ. सं. 27
9. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र (संत) सुन्दर ग्रन्थावली, ज्ञानसमुन्द्र 3/9 पृ. सं. 193
10. संत मलूक ग्रन्थावली, पृ. सं. 13
11. गुरु नानक देव, संतवाणी भाग - 2, पृ. सं. 49
12. डॉ. रामसागर त्रिपाठी / डॉ. शान्ति स्वरूप गुप्त, वृहद साहित्यिक निबंध, अशोक प्रकाशन दिल्ली, नवीन सं 1999, पृ. सं. 520